शतपथ ब्राह्मण का ध्वनि-विषयक वैशिष्ट्य

Saraswati Singh

Department of Sanskrit, BHU, Varanasi

Abstract

The Satapatha Brahmana, a brahmana of the hundred adhyayas belongs to the Vajsaneyi Samhita of the Sukla Yajurveda. There are two recensions of this brahmana that is the Kanva and the Madhyandina. This article concerns with the latter - Madhyandina Satapatha Brahmana. This is undoubtedly the second biggest book of the Vedic literature in its bulk, the first being the Rigveda. It is the most distinguished, extensive and doubtlessly its contents are most important among all the brahmanas.

During its historical process, we find lot of changes in Sanskrit morphology from the Ayurveda to the classical literature. But except for some insignificant differences the phonological system of all the types remains the same in all periods of the language. But Samhitas and some other Brahmanas retain the retroflex sound '1' and 'lh' which are altered 'd' and 'dh' (G) sounds coming between two vowels. They have already become obsolete in the language of the Satapatha Brahmana. The nasal anusvara with following s, s, s and h sounds becoming 'gun' is regular upto the Upanishadic periods.

Besides this we find some examples of doubling of consonant, insertion of syllable, irregular combination of final 'm' and phonetic changes in the Satapatha Brahmana.

In this article I have tried to collect all the possible linguistic peculiarities of the Satapatha Brahmana, 'phonological based'. I felt it also necessary to supply those noteworthy aspects which may not be the exclusive ones but are remarkable, unusual and ungrammatical.

ध्वनि विज्ञान-

ध्वनियों के सम्बन्ध में वैज्ञानिक विवेचन करने वाला विज्ञान 'ध्वनि-विज्ञान' कहलाता है। इसके लिये आधुनिक भाषा वैज्ञानिक फोनेटिक्स (Phonetics) शब्द का प्रयोग करते हैं। भाषा विज्ञान के अन्तर्गत इस विज्ञान का स्थान अत्यन्त महत्तवपूर्ण है। भाषा ध्वनियों पर आधारित होती है। ध्वनियों से ही भाषा का निर्माण हुआ है। प्रत्येक भाषा की ध्वनियों की अपनी निजी विशेषतायें होती हैं। ध्वानिविज्ञान भाषा की विभिन्न ध्वनियों का ठीक-ठीक ज्ञान कराता है तथा उसके ठीक उच्चारण की शिक्षा देता है। इसके द्वारा मनुष्य का उच्चारण-सम्बन्धी ज्ञान पूर्ण होता है।

ध्वनि-विज्ञान के अध्ययन का प्रारम्भ अत्यन्त प्राचीन काल मे ही हो गया था। विश्व की सर्वप्राचीन भाषा के रूप में उपलब्ध होने वाली वैदिक भाषा स्वयं ही इस बात को प्रमाणित करती है कि उस प्राचीन युग में भी भाषा का स्वरूप अत्यन्त प्राञ्जल था तथा यह भी सुस्पष्ट होता है कि वैदिक ऋषियों का प्रयास उस सुदूर प्राचीन काल में भी भाषा के परिष्कार की ओर पूर्ण रूप से था। संहिता-ग्रन्थों के सम्यगनुशीलन से यह भी विदित होता है कि उस प्राचीन युग में ध्वनि-सम्बन्धी अध्ययन अपने उच्च शिखर पर विराजमान था। ऋग्वेद संहिता के अनेक मन्त्र इस प्रकार के विधानों से भरे हुए हैं। दशम मण्डल तो इस दृष्टि से अपना अप्रतिम महत्त्व रखता है। शतपथ ब्राह्मण में भी अनेक स्थलों पर ध्वनि-विज्ञान सम्बन्धी, अनेक तथ्य प्राप्त होते हैं। एक स्थल पर शुद्ध उच्चारण के सम्बन्ध में कहा गया है असुर लोग 'हे अरयः हे अरयः' के शुद्ध उच्चारण में अशक्त होने के कारण 'हेलयः हेलयः' कहने के परिणामस्वरूप पराजित हुए।[१] इसी प्रसङ्ग में यह भी कहा गया है कि सन्दिग्ध वाणी में बोलने वाले 'म्लेच्छ' कहे जाते हैं।[२] महाभाष्य में भी इसका उल्लेख मिलता है। इसलिये ब्राह्मण को म्लेच्छ अर्थात् अपशब्द का प्रयोग नहीं करना चाहिये जो अपशब्द है वह निश्चय ही म्लेच्छ है।[३] पाणिनीय शिक्षा में कहा गया है कि 'स्वर' (accent) अथवा वर्ण की दृष्टि से दोषयुक्त शब्द मिथ्या उच्चरित होने के कारण अभीष्ट अर्थ का कथन नही करता। वह तो वाग्वज्र बनकर यजमान का ही

Vihana Bharati

नाश कर देता है। जिस प्रकार स्वर (accent) के अपराध से 'इन्द्रशत्रुः' शब्द यजमान का ही विनाशक सिद्ध हुआ।[४] शुद्ध शब्द के ज्ञान के प्रसङ्ग में महाभाष्य में एक उक्ति वर्णित है- 'एकः शब्दः सम्यग् ज्ञातः शास्त्रान्वितः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके कामधुक् भवति।'

शतपथ ब्राह्मण का ध्वनि-विषयक वैशिष्ट्य-

निःसन्देह वैदिक साहित्य का सर्वोपरि ग्रन्थ ऋग्वेद है किन्तु इसके बाद यदि किसी महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का नाम लिया जा सकता है तो वह है शतपथ ब्राह्मण। मैक्डॉनल ने भी इसे पूरे वैदिक साहित्य में ऋग्वेद के बाद परम महत्त्व का ग्रन्थ बताया है। वैदिक संस्कृति की अनवरत प्रवाहमान सरिता को अपनी जीवनधारा से परिप्लावित करने वाला तथा पूर्ववर्ती वैदिक संस्कृत की मुक्तलड़ियों को परवर्ती पौराणिक संस्कृति से जोड़ने वाला यदि कोई एकाकी प्रेरक आर्ष ग्रन्थ है तो वह है शतपथ ब्राह्मण। प्रस्तुत शोध-लेख शुक्लयजुर्वेदीय माध्यन्दिन शतपथ ब्राह्मण पर आधारित है। ब्राह्मण ग्रन्थों में शतपथ ब्राह्मण का महत्त्वपूर्ण स्थान है। शतपथ ब्राह्मण जहाँ एक ओर ऐतिहासिक तथ्यों की पिटारी है वहीं दूसरी ओर इसके ध्वनि-विषयक संकेत भी महत्त्वपूर्ण हैं।

वैदिक साहित्य से लेकर लौकिक साहित्य पर्यन्त संस्कृत-पद-रचना विज्ञान में महान् परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है परन्तु सभी कालों में कुछ महत्त्वहीन अन्तरों को छोड़कर ध्वनि-विषयक व्यवस्था प्रायः एक-सी रहीं हैं। ध्वनियाँ किसी उल्लेखनीय परिवर्तन से अछूती रहीं हैं। किसी नयी ध्वनि का विकास नहीं हुआ है तथा उनका वर्गीकरण भी वही रहा है। लौकिक संस्कृत में वैदिक भाषा की मौलिक ध्वनि-संरचना ज्यों की त्यों सुरक्षित है। संहिता तथा कुछ ब्राह्मण ग्रन्थों में ळ्, ळह् अतिरिक्त ध्वनियाँ भी मिलती हैं जो वस्तुतः ड् तथा ढ् के परिवर्तित रूप हैं। ये दोनों ध्वनियाँ माध्यन्दिन शतपथ ब्राह्मण में अप्रचलित हो गयी हैं किन्तु काण्व शतपथ ब्राह्मण में उपलब्ध हैं।[५] वाजसनेयि-प्रातिशाख्य में जिह्वामूलीय, उपध्मानीय, नासिक्य, ळकार एवं ळ्हकार के विषय में पर्याप्त विधान प्राप्त होते हैं परन्तु सूत्रकार ने स्वयं कहा है कि ये वर्ण माध्यनिदन शाखा के अध्येताओं को स्वीकार नहीं है।[६] अनुस्वार का परवर्ती श्, ष्, स् तथा ह् के कारण गुङ् हो जाना उपनिषद् काल तक विद्यमान था। अतः स्पष्ट रूप से शतपथ ब्राह्मण में किसी विशेष स्वतन्त्र ध्वनि का अभाव पाया जाता है।

माध्यन्दिन शतपथ ब्राह्मण में उच्चारण-सम्बन्धी अनेक विशेषतायें देखने को मिलती हैं। अन्य संहिताओं की तुलना में माध्यन्दिन संहिता के उच्चारण की कुछ विशिष्टता है। वस्तुतः शतपथ ब्राह्मण का उच्चारण माध्यन्दिन संहिता के अनुरूप है। इसमें यकार का जकार, षकार का खकार, अनुस्वार का गुँ, पद के आदि में वकार का द्वित्व (व्व), ऊष्म और ऋकार से संयुक्त रेफ का 'रे' (यथा 'सहस्त्रशीर्षा' का सहस्त्रशीरेखा) उच्चारण होता है। यह उच्चारण-पद्धति माध्यन्दिन-शाखा की अपनी विशिष्टता है और तदन्तर्भुक्त होने के कारण शतपथ में भी इसका होना नितान्त स्वाभाविक है। आचार्य बलदेव उपाध्याय ने वैदिक साहित्य और संस्कृति नामक अपने ग्रन्थ में इसका उल्लेख किया है।[७]

१. यकार का जकार उच्चारण-

'य' का 'ज' उच्चारण माध्यनिदन शाखा की सबसे बड़ी विशेषता है जिस पर सभी प्रमुख शिक्षा-ग्रन्थों में प्रकाश डाला गया है। यह 'य' के स्थान पर 'ज' का उच्चारण मात्र उच्चारणगत वैशिष्ट्य है, लिखित रूप में 'य' ही रहता है। इतना अवश्य है कि किन्हीं विशेष स्थितियों में जकार उच्चारण किया जाता है। लघुमाध्यन्दिनीय शिक्षा[८] तथा केशवकृतपद्यात्मिका शिक्षा में केवल पदादि में विद्यमान 'य' के 'ज' उच्चारण का उल्लेख है। ***आद्यन्तरस्थस्य जोच्चारः पदादौ पठितस्य च।***[९] अन्यत्र लघुमाध्यन्दिनीय शिक्षा में कहा गया है कि रेफ, हकार और ऋवर्ण से युक्त 'य' का 'ज' उच्चारण माध्यन्दिनीय ग्रन्थों में होता है। यथा- सूर्य -) सूर्ज, बाह्य -) बाह्ज तथा व्यृद्धि -) व्ज्रृद्धि।[१०] याज्ञवल्क्यशिक्षा[११] तथा वर्णरत्नप्रदीपिका शिक्षा[१२] में इस सम्बन्ध में सोदाहरण प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि- पाद के आरम्भ में, पद के आरम्भ में, व्यञ्जनों के संयोग होने पर तथा अवग्रह के बाद 'य' का उच्चारण 'ज' होता है। यथा- युक्तेन मनसा, तत्त्वा यामि, अनूकाशेन बाह्यः तथा ***योगे योगे***- ये चार उदाहरण क्रमशः पादादि, पदादि, संयोग और अवग्रह परे होने के हैं। यहाँ 'य' का 'ज' उच्चारण होगा। इससे भिन्न स्थितियों में 'य' उच्चारण ही होगा।

२. षकार का खकार की भाँति उच्चारण-

माध्यन्दिन शाखा में षकार का खकार उच्चारण पदान्त और पदमध्य में कुछ विशेष स्थितियों में होता है। माध्यन्दिन ऋषि को यह विषय इतना महत्त्वपूर्ण लगा कि अपनी लघुमाध्यन्दिनीय शिक्षा[१३] में उन्होंने ग्रन्थ का प्रारम्भ ही इस विषय से किया -

अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि माध्यन्दिनमतं यथा।
षकारः खकारः स्यात् टुग्योगे तु नो भवेत्।।

Vijnana Bharati

अर्थात् 'ष' का 'ख' उच्चारण होता है किन्तु टुक् योग होने पर ऐसा नहीं होता है। कहने का अभिप्राय यह है कि टवर्ग और ककार संयुक्त 'ष' का 'ख' उच्चारण नहीं होगा। सूत्रात्मिका केशवीशिक्षा और स्वरभक्तिलक्षणपरिशिष्ट शिक्षा में केवल ट वर्ग को छोड़कर 'ष' का 'ख' उच्चारण किये जाने का विधान मिलता है। स्वरभक्तिलक्षण परिशिष्ट शिक्षा में संक्षेप में कुछ उदाहरण दिये गये हैं।[१४] केशवीशिक्षा की व्याख्या में मन्त्रभाग एवं ब्राह्मणभाग दोनों से उदाहरण दिये गये हैं। मन्त्रभाग का उदाहरण है- 'इषेत्वा' इसमें खकार उच्चारण होगा। ब्राह्मणभाग का उदाहरण है- 'इयं पृथिवी सर्वेषां भूतानाम्' यहाँ भी खकार उच्चारण होगा। प्रतिज्ञासूत्र[१५] में भी टवर्ग-योग को छोड़कर अन्यत्र 'मूर्धन्य ऊष्म'[१६] का खकार उच्चारण का निर्देश दिया गया है।

विसर्ग का हकार की भाँति उच्चारण-

लघुमाध्यन्दिनीय शिक्षा[१७] में उच्चारणगत इस विशेषता पर विस्तार से विचार किया गया है। हकार के समान उच्चारण होते हुए भी विसर्ग को हकार नहीं मानना चाहिये। यह उच्चारण क्रमशः हकार, हिकार, हुकार, होकार और हौकार के समान होता है। क्रमपूर्वक इनके उदाहरण- देवो वः सविता, देवीस्तिस्रो, आखुस्ते पशुः, अग्नेः, बाहोः - इत्यादि हैं। इन सभी उदाहरणों से यह भी ज्ञात होता है कि ऋषि ने सर्वत्र विसर्ग का उच्चारण स्वर के उच्चारण सदृश निर्दिष्ट किया है। शतपथ ब्राह्मण में एक स्थल पर यह उच्चारणगत वैशिष्ट्य लिखित रूप में भी देखने को मिलता है। यथा - दध्मह (दध्मः)।[१८]

ऋकार का रे की भाँति उच्चारण-

आचार्यों में ऋकार के उच्चारण को लेकर पर्याप्त मतभेद रहा है। विभिन्न मतों के अनुसार ऋकार का रि, रू अथवा रे रूपों में उच्चारित किये जाने का विधान है। यह वैषम्य शाखाभेद एवं क्षेत्रभेद के कारण है। माध्यन्दिन शाखा में 'ऋ' का एकार संयुक्त अर्थात् रेकाररूप उच्चारण होता है। यथा- सहस्रशीर्षा का सहस्रशीरेखा। ऐसा शिक्षा ग्रन्थों में स्पष्ट रूप से किया गया है। सूत्रात्मिकाकेशवीशिक्षा[१९] के अनुसार पदान्त और पदमध्य में व्यञ्जनपूर्वक अथवा व्यञ्जनरहित 'ऋ' का 'रे' की भाँति उच्चारण भी दिये हैं। यथा- कृष्णोऽसि > क्रेष्णोऽसि।[२०] यही बात लघुमाध्यन्दिनीय शिक्षा[२१] में भी कही गयी है। इसकी पुष्टि हेतु उन्होंने तीन उदाहरण दिये हैं- ह्रदे > ह्रेदे, मृगः > म्रेगः, ऋचंवाचम् > रेचंव्वाचम्। इसके अतिरिक्त स्वरभक्ति लक्षण परिशिष्ट शिक्षा[२२] एवं प्रतिज्ञासूत्र[२३] में भी इस उच्चारणगत वैशिष्ट्य का विधान किया गया है।

अनुस्वार का गुंकार रूप में उच्चारण-

शुक्लयजुर्वेद के अधिकांश शिक्षा ग्रन्थों में अनुस्वार के विलक्षण उच्चारण पर स्पष्टता के साथ प्रकाश डाला गया है। इस पर सर्वसम्मति है कि अनुस्वार का गुंकार रूप में उच्चारण होता है।

व्यञ्जन ध्वनियों का द्वित्व-

ध्वनियों के उच्चारण में द्वित्व का महत्त्वपूर्ण स्थान है। परिस्थिति विशेष में जब किसी व्यञ्जन के पूर्व में उसी व्यञ्जन का आगम होता है तो उसे 'द्वित्व' कहते हैं। द्वित्व का परिणाम यह होता है कि मूलभूत व्यञ्जन के उच्चारण के पूर्व उसी व्यञ्जन का एक अतिरिक्त उच्चारण होता है। इस उच्चारण वैशिष्ट्य को क्रम, द्विरूक्ति एवं द्विर्भाव भी कहा जाता है। वाजसनेयिप्रातिशाख्य के चतुर्थ अध्याय के १६ सूत्रों में द्वित्व सम्बन्धी विधान किया जाता है। जब हम शतपथ ब्राह्मण के विभिन्न संस्करणों का सर्वेक्षण करते हैं तो व्याकरण-सम्बन्धी नियमों के बिना भी अनेक व्यञ्जनों का द्वित्व इसके ध्वनि-विषयक महत्त्व की ओर हमारे ध्यान को आकृष्ट करते हैं। शतपथ के सभी प्रकाशित संस्करणों में बेबर महोदय के संस्करण को छोड़कर शेष सभी ने विशेषतः प्रारम्भिक 'व' का द्वित्व कम या अधिक संख्या में किया है।

श्री हरिस्वामी लक्ष्मी वेंकटेश्वर (स्टीम प्रेस), विद्याधर, सत्यव्रतसामश्रमी तथा चिन्नस्वामी के संस्करणों में नियमतः प्रत्येक शब्द के प्रत्येक पदादि 'व' का द्वित्व किया जाता है।

वदति > व्वदति;[२४] विद्वान् > व्विद्वान्[२५]

व्रतपते > व्व्रतपते;[२६] विसृजते > व्विसृजते[२७] इत्यादि

विद्याधर के संस्करण में अन्य ध्वनियों का भी द्वित्व मिलता है। उसमें 'व' के अतिरिक्त प्रारम्भिक 'न' रेफसंयुक्त 'प' एवं 'य' ध्वनि का भी द्वित्व मिलता है। विद्याधर के संस्करण का पाठ वाजसनेयि-प्रातिशाख्य के नियमों के अनुसार है।

न्वेव > न्नवेव;[२८] प्राङ् > प्प्राङ्[२९]

प्रत्युष्टम् > प्प्रत्युष्टम्;[३०] युनक्ति > य्युनक्ति[३१] इत्यादि

श्री हरिस्वामी लक्ष्मीवेंकटेश्वर के संस्करण में प्रारम्भिक 'व' को छोड़कर अन्य किसी भी ध्वनि का शतपथ ब्राह्मण के बारहवें काण्ड तक द्वित्व नहीं मिलता है। बारहवें काण्ड से आगे

Vijnana Bharati

कुछ अन्य प्रारम्भिक ध्वनियाँ भी 'ऋ' तथा 'र' ध्वनियों के साथ यदा-कदा द्वित्व को प्राप्त हुई हैं।

गृहीतः > ग्गृहीतः;[३२] गृहः > ग्ग्रहः[३३]

ग्राम्या > ग्ग्राम्याः[३४]

इसके अतिरिक्त 'प', 'ब', 'भ' तथा 'म' ध्वनि भी रेफसंयुक्त होने पर द्वित्व को प्राप्त हुई है। कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं-

प्राणाः > प्प्राणाः;[३५] बृहती > ब्बृहती[३६]

ब्रह्म > ब्ब्रह्म;[३७] भ्रातृव्यान् > भ्भ्रातृव्यान्[३८]

मृत्युः > म्मृत्युः;[३९] म्रियते > म्म्रियते[४०] इत्यादि।

'य' ध्वनि भी शतपथ के चौदहवें काण्ड में द्वित्व को प्राप्त हुई है-

यज्ञं > य्यज्ञं[४१] इसके अतिरिक्त अन्य ध्वनियाँ शतपथ ब्राह्मण के किसी भी संस्करण में द्वित्व को नहीं प्राप्त हुई हैं।

इसके अतिरिक्त इसमें स्वरलोप, व्यञ्जनलोप, समाक्षरलोप, अक्षरागम तथा ध्वनि-परिवर्तन के अनेक उदाहरण कहीं व्याकरण के नियमानुसार और कही व्याकरण-सम्बन्धी नियमों के विना भी देखने को मिलते हैं।

सन्दर्भ :

१. शत.बा. ३.२.१.२३

२. शत.बा. ३.२.१.१४

३. तेऽसुरा हेलयो हेलय इति कुर्वन्तः पराबभूवुः। तस्मात् ब्राह्मणेन न म्लेच्छितवै नापभाषितवै। म्लेचछो ह वा एष यदपशब्दः। महाभाष्य, पृ. १८

४. दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्।।

५. ळ्- पुरोळाशं का.शत.ब्रा. १.७.२.१.९; पुरोडाशं मा.शत.ब्रा. २.५.३.२०; ळह्- निर्वोळहेति- का.शत.ब्रा. २.७.३.२; निर्वोढा- मा.शत.ब्रा. १.८.१.२

६. वाज.प्रा. ८.३९

७. आचार्य बलदेव उपाध्याय, वैदिक साहित्य और संस्कृत, पृ. २०७

८. लघु.शि.- कारिका सं. २, उ. ३

९. केशव.शि.- कारिका सं. ७

१०. लघु.शि.- कारिका सं. ४, उ. ६ पू.

११. याज्ञ.शि.- कारिका सं. १५०

१२. वर्ण.प्र.शि.- कारिका सं. २०४-२०५

१३. लघु.शि.- कारिका सं. १-२ उ.

१४. स्वर.ल.प.शि.- कारिका सं. १७

१५. प्र.सू. २.७

१६. केशव.शि.- कारिका सं. १४-१५

१७. लघु.शि.- कारिका सं. २२

१८. शत.ब्रा. ८.४.४.११

१९. सू.के.शि.- सूत्र ८

२०. शु.यजु. २.१; शत.ब्रा. १.३.३.१

२१. लघु.शि.- कारिका सं. २८

२२. स्वर.ल.प.शि.- कारिका सं. १८

२३. प्र.सू. २

२४. शत.ब्रा. १.१.१.१

२५. शत.ब्रा. १.१.१.५

२६. शत.ब्रा. १.१.१.२

२७. शत.ब्रा. १.१.१.३

२८. शत.ब्रा. १.१.१.३

२९. शत.ब्रा. १.१.१.१

३०. शत.ब्रा. १.१.२.२

३१. शत.ब्रा. १.१.१.१३

३२. शत.ब्रा. १४.३.२.७-८

३३. शत.ब्रा. १४.३.२.२-९

३४. शत.ब्रा. १२.७.३.१९

३५. शत.ब्रा. १२.८.१.११.-१२

३६. शत.ब्रा. १४.१.१.२२

३७. शत.ब्रा. १४.१.१.२३

३८. शत.ब्रा. १४.२.२.१

३९. शत.ब्रा. १४.३.२.१०

४०. शत.ब्रा. १४.३.२.११

४१. शत.ब्रा. १४.१.१.५

Vijnana Bharati